'अंगविज्जा'मां निर्दिष्ट
भारतीय-ग्रीक-कालीन अने क्षत्रपकालीन सिक्का

– ह. भायाणी

(१)

सद्‌गत मुनि श्रीपुण्यविजय वडे संपादित प्राकृत ग्रंथ 'अंगविज्जा' (प्राकृत ग्रन्थ परिषद, क्रमांक १, १९५७)मां ईसवी चोथी शताब्दीनी (तथा तेनी पूर्ववर्ती बे-त्रण शताब्दीओनी), जीवनने भाग्ये ज कोई प्रदेश बाकी रहे तेवी अढळक शब्द-सामग्रीनो संचय छे. अने संपादके मोटा कदना ८७ जेटलां पृष्ठोमां सविस्तर वर्गीकृत शब्दसूचि आपीने अभ्यासीओने घणी सगवड करी आपी छे.

'अंगविज्जा'मां एक स्थाने धनने लगती विगतो आपतां सुवर्णमाषक, रजतमाषक, दीनारमाषक, णाण(?)मासक, कार्षापण, क्षत्रपक, पुराण अने सतेरक एटला सिक्काओनो निर्देश छे (पृ. ६६, पद्यांक १८५-८१६). बीजा एक स्थाने आ उपरांत अर्धमाष, काकणी अने 'अट्ठा'नो निर्देश छे. अन्यत्र पण बे स्थाने सिक्काओनो उल्लेख छे (पृ. ७२, १८९).

आ सिक्काओनुं ग्रंथनी भूमिकामां सद्गत वासुदेवशरण अग्रवाले जे सविस्तर विवरण आप्युं छे ते इतिहासरसिकोना ध्यान पर आवे ते माटे नीचे उद्धृत कर्युं छे.

'मौर्यकालथी गुप्तकाल'मां ('गुजरातनो राजकीय अने सांस्कृतिक इतिहास', ग्रंथ २, १९७२) रसेश जमीनदारे आमांथी काहापणनो (पृ. १७७) तथा भोगीलाल सांडेसराए काहावण, खत्तपक अने सतेरकनो (पृ. २२७) उल्लेख कर्यो छे. 'अंगविज्जा'ना पांचमा परिशिष्टना बारमा विभागमां पृ. ६६ तथा ७२ उपर निर्दिष्ट सिक्काओनी सूचि आपी छे.

जमीनदारे 'प्राक्-गुप्तकालीन भारतीय सिक्काओ'मां (१९९८), पृष्ठ १३४ उपर 'अंगविज्जा'मांथी काहापण अने खत्तपकनो निर्देश कर्यो छे. तेमणे जणाव्युं छे तेम 'विद्यापीठ' द्वैमासिकमां केटलांक वरस पहेलां प्रकाशित लेखमाळा एमना ए पुस्तक रूपे हवे सुलभ बने छे. एमां लेखके सिक्काविज्ञान विशे तथा भारतीय सिक्काशास्त्र विशे सामान्य माहिती आपीने पछी चिन्हित संज्ञा वाळा सिक्काओ, नगर, गण अने जनपदना सिक्का तथा विदेशी शासकोना सिक्का विशे व्यवस्थित माहिती आपी छे. आथी सिक्काशास्त्रने लगता साहित्यनी गुजरातीमां अभाव जेवी दशामां एक प्रमाणभूत पुस्तक लेखे एनुं मूल्य उघाडुं छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

'इसी प्रकरण (९, २) में धन का विवरण देते हुए कुछ सिक्कों के नाम आये हैं, जैसे स्वर्णमासक, रजतमासक, दीनारमासक, णाणमासक, काहापण, क्षत्रपक, पुराण और सतेरक। इनमें से दीनार कुषाणकालीन प्रसिद्ध सोने का सिक्का था जो गुप्तकाल में भी चालू था। णाण संभवतः कुषाण सम्राटों का चलाया हुआ मोटा गोल घड़ी आकृति का तांबे का पैसा था जिसके लाखों नमूने आज भी पाये गये हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि ननादेवी की आकृति सिक्कों पर कुषाणकाल में बनाई जाने लगी थी और इसीलिए चालू सिक्कों को नाणक कहा जाता था। पुराण शब्द महत्त्वपूर्ण है जो कुषाणकाल में चांदी की पुरानी आहत मुद्राओं (अंग्रेजी पंचमार्क्ड) के लिए प्रयुक्त होने लगा था, क्योंकि नये ढाले गये सिक्कों की अपेक्षा वे उस समय पुराने समझे जाने लगे थे यद्यपि उनका चलन बेरोक-टोक जारी था। हुविष्क के पुण्यशाला लेख में ११०० पुराण सिक्कों के दान का उल्लेख आया है। खत्तपक संज्ञा चांदी के उन सिक्कों के लिए उस समय लोक में प्रचलित थी जो उज्जैनी के शकवंशी महाक्षत्रपों द्वारा चालू किये गये थे और लगभग पहली शती से चौथी शती तक जिनकी बहुत लम्बी श्रृंखला पायी गई है। इन्हें ही आरम्भ में रुद्रदामक भी कहा जाता था। सतेरक यूनानी स्टेटर सिक्के का भारतीय नाम है। सतेरक का उल्लेख मध्यएशिया के लेखों में तथा वसुबन्धु के अभिधर्मकोश में भी आया हैं।

पृष्ठ ७२ पर सुवर्ण-काकिणी, मासक-काकिणी, सुवर्णगुञ्जा और दीनार का उल्लेख हुआ है। पृ. १८९ पर सुवर्ण और कार्षापण के नाम हैं। पृ. २१५-२१६ पर कार्षापण और णाणक, मासक, अद्धमासक, काकणी और अट्ठभाग का उल्लेख है। सुवर्ण के साथ सुवर्ण-माषक और सुवर्ण-काकिणी का नाम विशेष रूप से लिया गया है (पृ. २१६)।

अध्याय ५६ में इसके अतिरिक्त कुछ प्रचलित मुद्राओं के नाम भी हैं, जो उस युग का वास्तविक द्रव्य धन था; जैसे काहावण (कार्षापण) और णाणक। काहावण या कार्षापण कई प्रकार के बताये गये हैं। जो पुराने समय से चले आते हुए मौर्य या शुंग काल के चांदी के कार्षापण थे उन्हें इस युग में पुराण कहने लगे थे, जैसा कि अंगविज्जा के महत्त्वपूर्ण उल्लेख से (आदिमूलेसु पुराणे बूया) और कुषाणकालीन पुण्यशाला स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है (जिसमें ११०० पुराण मुद्राओं का उल्लेख है)। पृ. ६६ पर भी पुराण नामक कार्षापण का उल्लेख है। पुरानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्षापण मुद्राओं के अतिरिक्त नये कार्षापण भी ढाले जाने लगे थे। वे कई प्रकार के थे, जैसे उत्तम काहावण, मज्झिम काहावण, जहण्ण (जधन्य) काहावण। अंगविज्जा के लेखक ने इन तीन प्रकार के कार्षापणों का और विवरण नहीं दिया। किन्तु ज्ञात होता है कि वे क्रमशः सोने, चांदी और तांबे के सिक्के रहे होंगे, जो उस समय कार्षापण कहलाते थे। सोने के कार्षापण अभी तक प्राप्त नहीं हुए किन्तु पाणिनि सूत्र ४.३.१५३ (जातरूपेभ्यः परिमाणे) पर 'हाटकं कार्षापणं' यह उदाहरण काशिका में आया है। सूत्र ५.२.१२० (रूपादाहत प्रशंसयोर्यप्) के उदाहरणों में रूप्य दीनार, रूप्य केदार और रूप्य कार्षापण इन तीन सिक्कों के नाम काशिका में आये हैं। ये तीनों सोने के सिक्के ज्ञात होते हैं। अंगविज्जा के लेखक ने मोटे तौर पर सिक्कों के पहले दो विभाग किए - काहावण और णाणक। इनमें से णाणक तो केवल तांबे के सिक्के थे। और उनकी पहचान कुषाणकालीन उन मोटे पैसों से की जा सकती है जो लाखोंकी संख्या में वेमतक्षम, कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव आदि सम्राटों ने ढलवाये थे। णाणक का उल्लेख मृच्छकटिक में भी आया है, जहां टीकाकार ने उसका पर्याय शिवाङ्क टंक लिखा है। यह नाम भी सूचित करता है कि णाणक कुषाणकालीन मोटे पैसे ही थे, क्योंकि उनमें से अधिकांश पर नन्दीवृष के सहारे खडे हुए नन्दिकेश्वर शिव की मूर्ति पाई जाती है। णाणक के अन्तर्गत तांबे के और भी छोटे सिक्के उस युग में चालू थे जिन्हें अंगविज्जा में मासक, अर्धमासक, काकणि और अट्ठा कहा गया है। ये चारों सिक्के पुराने समय के तांबे के कार्षापण से संबंधित थे जिसकी तौल सोलह मासे या अस्सी रत्ती के बराबर होती थी। उसी तौल माप के अनुसार मासक सिक्का पांच रत्ती का, अर्धमासक ढाई रत्ती का, काकणि सवा रत्ती की और अट्ठा या अर्धकाकणि उससे भी आधी तौल की होती थी। इन्हीं चारों में अर्धकाकणि पच्चवर (प्रत्यवर) या सबसे छोटा सिक्का था। कार्पापण सिक्कों को उत्तम, मध्यम और जघन्य इन तीन भेदों में बांटा गया है। इसकी संगति यह ज्ञात होती कि उस युग में सोने, चांदी और तांबे के तीन प्रकार के नये कार्षापण सिक्के चालू हुए थे। इनमें से हाटक कार्षापण का उल्लेख काशिका के आधार पर कह चुके हैं। वे सिक्के वास्तविक थे या केवल गणित अर्थात् हिसाब किताब के लिये प्रयोजनीय थे इसका निश्चय करना संदिग्ध है, क्योंकि सुवर्ण कार्षापण अभी तक प्राप्त नहीं हुए। चांदी के कार्षापण भी दो प्रकार के थे। एक नये और दूसरे मौर्य श्रृंग काल के बत्तीस रत्ती वाले पुराण कार्षापण। चांदी के कार्षापण कौन से थे इसका निश्चय करना भी कठिन है। संभवतः यूनानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या शक-यवन राजाओं के ढलवाये हुए चांदी के सिक्के नये कार्षापण कहे जाते थे। सिक्कों के विषय में अंगविज्जा की सामग्री अपना विशेष महत्त्व रखती है। पहले की सूची में (पृ. ६६) खतपक और सत्तेरक इन दो विशिष्ट मुद्राओं के नाम आ भी चुके हैं। मासक सिक्के भी चार प्रकार के कहे गये हैं - सुवर्ण मासक, रजत मासक, दीनार मासक और चौथा केवल मासक जो तांबे का था और जिसका संबंध णाणक नामक नये तांबे के सिक्के से था। दीनार मासक की पहचान भी कुछ निश्चय से की जा सकती है, अर्थात् कुषाण युग में जो दीनार नामक सोने का सिक्का चालू किया था और जो गुप्त युग तक चालू रहा, उसी के तोलमान ये संबंधित छोटे सोने का सिक्का दीनार माषक कहा जाता रहा होगा। ऐसे सिक्के उस युग में चालू थे यह अंगविज्जा के प्रमाण से सूचित होता है। वास्तविक सिक्कों के जो नमूने मिले हैं उनमें सोने के पूरी तौल के सिक्कों के अष्टमांश भाग तक के छोटे सिक्के कुषाण राजाओं की मुद्राओं में पाये गये हैं (पंजाब संग्रहालाय सूची संख्या ३४, ६७, १२३, १३५, २१२, २३७), किन्तु संभावना यह है कि षोडशांश मोल के सिक्के भी बनते थे। रजतमाषक के तात्पर्य चांदी के रौप्यमासक ये ही था। सुवर्णमासक यह मुद्रा ज्ञात होती है जो अस्सी रत्ती के सुवर्ण कार्षापण के अनुमान से पांच रत्ती तौल की बनाई जाती थी।

इसके बाद कार्षापण और णाणक इन दोनों के विभाग की संख्या का कथन एक से लेकर हजार तक किन लक्षणों के आधार पर किया जाना चाहीए यह भी बताया गया है। यदि प्रश्नकर्ता यह जानना चाहे कि गडा हुआ धन किसमें बंधा हुआ मिलेगा तो भिन्न भिन्न लोगों के लक्षणों से उत्तर देना चाहीये। थैली में (थविका) चमडे की थैली में (चम्मकोस), कपड़े की पोटली में (पोट्टलिकागत) अथवा अट्टियगत (अंटी की तरह वस्त्र में लपेटकर), सुत्तबद्ध, चक्कबद्ध, हेत्तिबद्ध- पिछले तीन शब्द विभिन्न बन्धनों के प्रकार थे जिनका भेद अभी स्पष्ट नहीं है। कितना सुवर्ण मिलने की संभावना है इसके उत्तर में पांच प्रकार की सोने की तौल कही गई है, अर्थात् एक सुवर्णभर, अष्ट भाग सुवर्ण, सुवर्णमासक (सुवर्ण का सोलहवां भाग), सुवर्ण काकिणि (सुवर्ण का बत्तीसवां भाग) और पल (चार कर्ष के बराबर)।'

(३)

उपरना विवरणमां जे सतेरक नामनो सिक्को छे ते यूनानी स्टेटर (stater) होवानुं अग्रवाले तेम ज सांडेसराए कह्युं छे। परंतु बीजी एक शक्यता पण विचारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शकाय। केटलाक भारतीय-ग्रीक सिक्काओ पर अग्रभागे ग्रीक लिपिमां अने पृष्ठभागे खरोष्ठी लिपिमां जे लखाण छे तेमां राजाना एक बिरुद तरीके Soteras / त्रतरस (= त्रातारस्य) आपेलुं छे. आ Soter परथी संस्कृत रूप 'सतेरक' थयुं होय, जेम रुद्रदामानो सिक्को ते 'रुद्रदामक' तेम सतेरनो सिक्को ते 'सतेरक' : 'पारूथक द्रम्म', 'स्पर्धक' ए सिक्कानामोमां पण 'क' प्रत्यय रहेलो छे. Soter अने 'सतेरक'नुं उच्चारसाम्य अधिक छे. जेम Apolodotas नुं प्राकृत 'अपलदत' करायुं, तेमां ग्रीक Oने माटे 'अ' मळे छे, ते ज प्रमाण Soter ना Oने स्थाने 'सतेरक' मां 'अ' छे.

संस्कृतमां **शौटिर** 'अभिमानी', **शौटीर्य** 'अभिमान, पौरुष' ए शब्दो महाभारत-कालीन छे। ए उपरांत **शौण्डीर** तथा रूपांतरे **शौण्डिर** अने **शौडीर** तथा नाम **शौण्डीर्य** के **शौण्डर्य** ए प्रमाणे मळे छे। 'वीर' अने 'वीरता' एवा अर्थ पण नोंधाया छे. प्राकृतमां **सोडीर, सोंडीर** 'शूर', 'शूरता' एवा शब्दो छे. मारी एवी अटकळ छे के मूळ शब्द सं. **शौटीर**, प्रा. **सोडीर** होय, अने ए आ ग्रीक - Soter 'त्राता' उपरथी संस्कृत-प्राकृतमां लेवायो होय। **शौण्डीर, सोंडीर** ए रूपांतरो पछीथी कदाच **शौण्ड** 'व्यसनी, निपुण' साथे जोडी देवायाथी थया होय।

* * *

प्रियतमा वडे प्रियतमनुं स्वागत

१. ईसवी बीजी सदीमां थयेला प्रतिष्ठानना राजा हाल सातवाहननो, विविध कविओए रचेलां प्राकृतभाषानां मुक्तकोनो जे संग्रह, 'गाथासप्तशती' के 'गाथाकोश'ने नामे जाणीतो छे, तेनी १४०मी गाथा नीचे प्रमाणे छे :

रच्छा-पइण्ण-णअणुप्पला तुमं सा पडिच्छए एंतं ।
दार-णिहिएहिं दोहिं वि मंगल-कलसेहिं व थणेहिं ॥

अर्थ : तारा आववाना मार्ग पर दृष्टिनां नीलकमळ बिछावीने अने द्वारप्रदेश पर स्तनकलश राखीने ते तारुं स्वागत करवा ऊभी छे.

अहीं, आवी रहेला नायकना स्वागत माटे पुष्पो अने मंगळ कलशने स्थाने प्रतीक्षा करती नायिकाना नयनकुवलयथी थतो दृष्टिपात अने तेना कलश समा स्तन होवानी कल्पना छे.

२. बीजा एक मुक्तकनो अनुवाद हुं नीचे आपुं छुं :

तरुणीना स्तनकलश उपर झूलती, रातांलीलां किरणांकुरे स्फुरती माणेक-नीलमनी माळा : प्रीतमना हृदय-प्रवेश-उत्सव माटेना मंगळ पूर्णकलश उपर तोरणे झूलती वंदनमालिका.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ विचारनुं विस्तरण 'अमरुशतक'ना २५मा मुक्तकमां जोवा मळे छे. के. ह. ध्रुवे पोताना अनुवादमां उपर्युक्त प्राकृत गाथानो तुलना माटे निर्देश करेलो छे. (ते ज प्रमाणे जोगळेकरे पोताना 'गाथासप्तशती'ना अनुवादमां 'अमरुशतक'नुं मुक्तक तुलना माटे आप्युं छे.) अमरुनुं ए मुक्तक तथा के.ह.ध्रुवनो अनुवाद हुं नीचे आपुं छुं :

दीर्घा वंदनमालिका विरचिता दृष्ट्यैव नेंदीवरैः
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुंद-जात्यादिभिः ।
दत्तो स्वेदमुचापयोधर-भरेणार्घ्यो न कुंभांभसा
स्वैरेवायवयैः प्रियस्य विशतस् तन्व्या कृतं मंगलम् ॥
('दृष्ट्यैव'ने बदले पाठांतर 'नेत्रैर् विनें०')
'द्वारे वंदनमाळ दीर्घ सुहवे नेने, न नीलोत्पले
पूरे मर्कलडे ज चोक जुवती, ना जाईजूई फूले
ने अर्घे अरपे पयोधरजळे, ना कुंभकेरा पये
व्हालानां पगलां वधावी विध ए अंगे ज तन्वी लिये.'

आ मुक्तकना भाव, संचारी, रस वगेरेनुं विवरण करतां ध्रुवे कह्युं छे : 'अहीं पहेला चरणमां औत्सुक्य, बीजा चरणमां हास अने त्रीजा चरणमां स्वेद आदि भाव प्रतीत थाय छे, ते बधा हर्ष नामे संचारी भावना सहकारी बनी प्रवासानंतर संभोगशृंगारनुं पोषण करे छे. 'सरस्वती कंठाभरण' प्रमाणे समाहित अलंकार छे, ते नायकना परितोष रूपी ध्वनिनुं अंग छे. आ विलास नामे स्वभावज अलंकारनो दृष्टांत छे. आत्मोपक्षेप नर्म छे. व्यतिरेक अलंकारनो ध्वनि छे'. (पृ. २५-२६) ।

४. भोजकृत 'शृंगारप्रकार'मां संभोगशृंगारना निरूपणमां. रतिप्रकर्षना निमित्त लेखे जे प्रियागमन-वार्ता, प्रियसखीवाक्य वगेरे दर्शाव्यां छे, तेमां एक प्रकार मंगलसंविधाननो छे. प्रियना स्वागत माटे दधि, दुर्वांकुर वगेरे जोगववां ते मंगलसंविधान. तेनुं जे दृष्टांत आप्युं छे, ते अपभ्रंश भाषामां होईने तेनो पाठ घणो भ्रष्ट छे (पृ. १२२१). तेनुं पुनर्घटन करतां जे केटलुं समजाय छे तेनो अर्थ आ प्रमाणे छे :

प्रियने आवतो जोतां ज हर्षावेशथी तूटी पडेल वलय ते श्वेत जव, हास्य स्फुर्युं ते दहीं, रोमांच थयो ते दूर्वांकुर, प्रस्वेद ते रोचना(?), वंदन ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगळपात्र, विरहोत्कंठा अदृश्य थई ते उतारीने फेंकेलुं लूण, सखीओनी (आनंद)अश्रुधारा ते जळनो अभिषेक, विरहानल बुझायो ते आरती–आ रीते प्रियतमना आगमने मुग्धाए मंगळविधि संपन्न कर्यो । (वी. एम. कुलकर्णी संपादित Prakrit Verses in Sanskrit Works on Poetics. भाग १, परिशिष्ट १, पृ. ३४) ।

५. आनो ज जाणे के पडघो सोमप्रभे 'कुमारपालप्रतिबोध'मां पाड्यो छे. कोशा गणिकाए स्थूलभद्रने पोताने त्यां आवतो जोई कई रीते तेनुं पोतानां अंगो वगेरेथी प्रेमभावे स्वागत कर्युं ते वर्णवतां कवि कहे छे :

कलिउ दप्पणु वयण-पउमेण
रोलंब-कुल-संवलिय, कुसुम-वुट्ठि दिट्ठिहिं पयासिय ।
पल्हत्थ-उवरिल्ल थण, कणय-कलस-मंगल्ल-दरिसिय ॥
चंदणु दंसिउ हसिय-मिसि, इय कोसहिं असमाणु ।
घर पविसंतह तासु किउ, निय-अंगिहिं संमाणु ॥

(१९९५नुं पुनर्मुद्रण, पृ. ५०६, पद्यांक १४)

'वदनरूपी दर्पण धर्युं, दृष्टिपातो वडे भ्रमर-मंडित कुसुमवृष्टि करी, उत्तरीय खसी जतां प्रगट बनेल स्तनो वडे मांगलिक कनककलश दर्शाव्या, हास्यवडे चंदन - एम घरमां प्रवेश करता स्थूलभद्रनुं कोशाए पोतानां अंगो वडे अनुपम संमान कर्युं.'

६. छेवटे विश्वनाथना 'साहित्यदर्पण'मांथी :

अत्युन्नत-स्तन-युगा तरलायताक्षी, द्वारि स्थिता तदुपयान-महोत्सवाय ।
सा पूर्ण-कुंभ-नव-नीरज-तोरण-स्त्रक्-संभार-मंगलमयत्न-कृतं विधत्ते ॥

'जेनुं स्तनयुगल अति उन्नत छे, अने नेत्रो चंचळ तथा दीर्घ छे एवी ते तरुणी प्रियतमना आगमननो उत्सव मनाववा द्वारप्रदेशमां ऊभी छे. तेथी पूर्णकुंभ, नीलकमळ अने तोरणमाळनी मंगळसामग्री कशा ज यत्न वगर उपस्थित थई गई छे.'

आम, मूळे बीज रूपे जोवा मळतुं एक काव्यात्मक भावनुं वर्णन उत्तरोत्तर परंपरामां कविओ द्वारा केवुं विस्तरण पामतुं जाय छे तेनुं आ एक सरस उदाहरण छे.

* * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जुगाइजिणिंदचरियं' ना एक पद्यनो आधार

वर्धमानसूरिए तेमनी 'जुगाईजिणिंदचरिय', वगेरे कृतिओमां पूर्व परंपराओनो ठीकठीक लाभ लीधो छे । 'जुगाइजिणिंदचरिय' (रचनाकाल ई.स. ११०४)मां ऋषभनाथना धनसार्थवाह तरीकेना पहेला भवना वर्णनमां धन एक सवारे जे मंगळपाठक वडे उच्चारातुं मंगळ पद्य सांभळे छे ते नीचे प्रमाणे छे (मुद्रित पाठ अशुद्ध होईने शुद्ध करी आप्यो छे) :

कुमुय-वणमसोहं पउम-संडं सुसोहं
अमय-विगय-सोयं घूय-चक्काण चक्कं ।
पसिढिल-कर-जालो जाइ अत्थं मयंको
उदयगिरि-सिरत्थो भाइ भाणू पसत्थो ॥

(पृ. ४, पद्यांक ४३)

संस्कृत छाया :

कुमुद-वनमशोभं पद्मषंडं सुशोभं
अमद-विगत-शोकं घूक-चक्राणां चक्रम् ॥
प्रशिथिल-कर-जालो याति अस्तं मृगांक
उदयगिरि-शिर-स्थो भाति भानुः प्रशस्तः ॥

आ नीचे आपेला माघकृत 'शिशुपालवध'ना जाणीता पद्य (११, ६४)नो ज प्राकृत अनुवाद छे :

कुमुद-वनमपश्रि श्रीमदंभोज-खंडं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हत-विधि-ललितानां ही विचित्रो विपाकः ॥

वर्धमानसूरिए आनुं चोथुं चरण छोडी दीधुं छे ।

* * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org